लकड़ी का साँप

मनोज कुमार पांडेय

लकड़ी का साँप

https://www.hindiadda.com/lakadi-ka-saanp/

शीर्षक देख कर शायद आप अंदाजा लगाएँ कि यह कहानी साँप के बारे में है। अगर आप ऐसा कोई अंदाजा लगाएँगे तो शर्तिया गलत साबित होंगे। मैं इतने यकीन से यह बात इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि यह कहानी मैं लिख रहा हूँ बल्कि इसलिए कि यह कहानी मेरी नहीं, मेरी पत्नी की कहानी है जिसके बारे में मैं आपसे ज्यादा जानता हूँ।

आप कहेंगे कि लेखक महोदय तब आपने इस कहानी का नाम साँप पर भला रखा ही क्यों, तो इसकी वजह बहुत छोटी-सी है। बात यह है कि मेरी एक दोस्त दिल्ली से एक माह बाद लौटी तो मेरे लिए लकड़ी का एक खूबसूरत साँप ले कर आई। कमबख्त ने कहा कि उसने साँप देखा और उसे खट से मेरी याद आई। लो कर लो बात। पर यह लकड़ी का साँप है बड़ा खूबसूरत। रबर की लाल-लाल जीभ लपलपाता, बल खाता। पहली नजर आप देखेंगे तो इसे जरूर असली समझेंगे और आपके भीतर एक ठंडी सिहरन दौड़ जाएगी पर सारा रोमांच तब तक, जब तक कि आप उसे दूर से देखें। अगर छुएँगे तो लकड़ी का खुरदुरा स्पर्श आपका सारा रोमांच हवा कर देगा।

तो जब मैं कमरे पर पहुँचा और रहस्य भरे अंदाज में बैग से साँप निकाला, मेरी पत्नी चीख पड़ी और काँपने लगी। मेरी तीन साल की बेटी का भी यही हाल था। और तो और, कॉलेज में मेरी प्रिंसिपल का भी यही हाल था।

पर यह भी तो सच है कि मेरी एक महिला मित्र इसे लाई थी और मेरी दूसरी महिला मित्र सिगरेट का कश खींचते हुए पहली से इस बात की शिकायत कर रही थी कि वह उसके लिए साँप क्यों नही लाई जबकि उसे एक खूबसूरत आईना मिला था, तो भी। यही सब तो है जीवन में। आप सारी चीजों के बारे में जब तक एक मुकम्मल राय बनाने की तरफ बढ़ते हैं तब तक कुछ और ऐसी चीजें सामने आ जाती हैं कि आप दुविधाग्रस्त हो जाते हैं और कोई फैसला मुल्तवी कर देते हैं। लेकिन मैं चाहता हूँ कि मैं भले ही किसी फैसले तक न पहुँचूँ पर आप जरूर पहुँचें। न भी पहुँचे तो किसी फैसले की तरफ बढ़ें जरूर, नहीं तो कहानी में इतनी देर तक सिर खपाने का फायदा क्या? ऐसा हो सके इसके लिए मैं बिना किसी दाँव-पेच के सारी बातें आपके सामने रख देना चाहता हूँ। आगे आप जानें। आखिर आप भी तो दिल और दिमाग रखते हैं। लेकिन आप दिल और दिमाग में से किसी एक के सहारे आगे बढ़ेंगे तो पक्का गलत नतीजे पर पहुँचेंगे बल्कि हो तो यह भी सकता है कि इस सारी रासायनिक क्रिया के दौरान आपको किसी उत्प्रेरक की भी जरूरत पड़े। पर मैं इस कामना के सिवा और क्या कर सकता हूँ कि संपादक इस कहानी के साथ कुछ ऐसे चित्र छापें कि आपकी मुश्किल दोगुनी हो जाए। तो आइए कहानी की तरफ चलते हैं।

गाँव में मेरा घर पुरवे से जरा हटकर है। अकेला। घर के सामने उत्तर की तरफ लगभग सौ मीटर पर एक नहर गई है। नहर और घर के बीच आम, नीम, महुआ और बड़हल आदि के कई पेड़ हैं जिनमें से नीम के एक पेड़ के बारे में आजी कहती हैं कि उसे उनके ससुर ने लगाया था। आजी की उमर है **90** साल, पेड़ की उमर का अंदाजा आप खुद लगाएँ। इन छतनार दरख्तों के बीच नींबू, करौंदा, गुड़हल, अनार, चीकू, और अमरूद के अनेक पेड़ हैं जिनमें से कई तो मेरे ही लगाए हुए हैं। सामने का यह हिस्सा पूरी तरह दिलफरेब और खूबसूरत है पर घर के बाईं तरफ का जो हिस्सा है उसे तो पाँच बिस्वे का जंगल कहा जा सकता है। दरअसल, यहाँ हमारा पुराना घर था जिसे आजी के ससुर ने बनवाया था।

इसका खंडहर अब भी है जो हर बरसात के बाद थोड़ा-सा चुक जाता है और उसकी जगह थोड़ा-सा जंगल बढ़ जाता है। बेर, जंगल जलेबी, मकोय, चिलबिल, झरबेरी, लसोढ़िया जैसी न जाने कितनी नाम-अनाम झाड़ियाँ यहाँ फैली हैं। इन सब झाड़ियों के ऊपर चढ़ी हुई है गुरुच, तीता कुंदुरू तथा और भी कई किस्म की बेलें जिन पर समय-समय पर रंग-बिरंगे फूल खिलते रहते हैं। मेरी छोटी बहन, जो मेरे दूसरे भाई के साथ इलाहाबाद में रहते हुए बी.एस.सी. कर रही है तीज-त्योहारों पर जब भी गाँव आती है तो इन सारी वनस्पतियों के नाम ढूँढ़ना उसका प्रिय शगल होता है।

आजी कहती हैं कि मरते वक्त उनकी सास ने कहा था कि यह बखरी कभी मत उजाड़ना। पुरखों को भटकने के लिए अँधेरे की जरूरत होती है। वे हमसे बहुत प्यार करते हैं पर सरेआम उजाले में हमारे सामने नहीं आ सकते। वे विधि से डरते हैं। और जब कभी सामने आते भी हैं तो कभी कौआ, कभी साँप, कभी नेवला बन कर। आजी कभी बिच्छू तक मारने के पक्ष में नहीं रहतीं। कहती हैं, चिमटे से पकड़कर बखरी में फेंक दो। पर जब से बाबू को हफ्ते भर के भीतर तीन बार बिच्छुओं ने डंक मारा तब से अब तक हम न जाने कितने पुरखों को मुक्ति प्रदान कर चुके हैं।

जब मेरी शादी हुई तब मेरा एम.ए. पहला साल था। मैंने शहर में कमरा ले रखा था पर चूँकि घर वहीं पास में था, **35-40** किलोमीटर के फासले पर, सो आना-जाना लगा रहता। शादी के बाद तो मैं बार-बार घर आने के मौके तलाशने लगा। मेरा आधा घर अब भी कच्चा है, तब पूरा कच्चा था। पीछे की तरफ एक बड़ा-सा आँगन था। मैं और मेरी पत्नी गर्मियों में आँगन में सोते और पूरा घर बाहर दुआरे पर। गर्मी का समय साँप, बिच्छू, गोजर जैसे कीड़े-मकोड़ों के निकलने का समय होता जो बारिश की शुरुआत तक चलता। सबसे पहले बिच्छू सामने आना शुरू करते, फिर गोजर। साँप अमूमन तब आते जब बारिश शुरू हो जाती, उनके बिलों में पानी भर जाता और वे

हमारे पुरखे सूखी जगह की तलाश में हमारे घर में घुस आते। हम इन स्थितियों के आदी थे। पता नहीं कितनी बार बिच्छू हमें डंक मार चुके थे। साँप हमारे ऊपर से फिसलते हुए हमारे रोंगटे खड़े कर चुके थे, पर मेरी पत्नी... उफ्... ऐसे में उसका चेहरा पीला पड़ जाता। हिंदुस्तान की आधी आबादी की तरह हमें भी अभी बिजली की रोशनी नहीं नसीब हुई थी। पत्नी को अँधेरे और कीड़ों दोनों से डर लगता। वह पूरी-पूरी रात सो नहीं पाती, जब कभी सोती भी तो नींद में ही रह-रह कर काँप उठती और मुझसे लिपट जाती। मैं नींद में भी एक सुखद अहसास से भर जाता और उसे अपनी बाँहों में जोर से कस लेता।

अब भी वह इसी तरह डरती है। हालाँकि अब वह गाँव में नहीं, नगर में है। इंदिरानगर, जहाँ हमारी किराए की रहनवारी है, से लखनऊ युनिवर्सिटी की दूरी लगभग बारह किलोमीटर है। जहाँ वह एक प्रोजेक्ट में काम कर रही है। युनिवर्सिटी पहुँचने के लिए वह दो बार ऑटो बदलती है। वह बताती नहीं पर क्या मैं जानता नहीं कि रोज-ब-रोज उसका सामना किस कदर खौफनाक और लिजलिजे साँपों, बिच्छुओं और कनखजूरों से होता रहता है। आप अखबार पढ़ते होंगे तो हिंदुस्तान के किसी भी शहर या गाँव में क्यों न रहते हों, रोज-ब-रोज इन कनखजूरों और साँपों की बढ़ती ताकत और खौफ का अहसास आपको जरूर होगा। मेरी पत्नी तो रोज इन्हीं स्थितियों से गुजरती है। प्रोजेक्ट में भी उसका काम अखबार पढ़ना है। फिर भी वह रोज आती है, जाती है। क्या सिर्फ पैसे कि लिए वह रोज-रोज सूली पर चढ़ती है? पैसा तो अब मैं भी कम नहीं कमाता और फिर हमारी जरूरतें ही कितनी हैं। हम दोनों, हमारी एक बेटी। और तो और, वह इतनी छोटी है कि उसका कहीं दाखिला भी नहीं है। फिर भी।

फिर भी।

मेरी पत्नी बेहद लाड़ में पली थी। मेरे ससुर एक इंटर कॉलेज में लेक्चरर हैं। घर में माँ-बाप और दो बच्चे, यानी मेरी पत्नी और उसका भाई। अमूमन उसने किसी तरह के अभाव को ज्यादा महसूस नहीं किया जबकि हम सात भाई-बहनों का बचपन तरह-तरह के अभावों और कुंठाओं के बीच बीता। खुद मैंने अपने जीवन का पहला जूता हाईस्कूल की बोर्ड परीक्षा के समय पहना। खैर जब हमारी शादी हुई और वह घर आई तब हम भी पहले जैसे नहीं रह गए थे पर गरीब रह चुके लोगों में दाने-दाने बीनने की जो आदत घर कर जाती है उसका हम क्या करते! जब ज्यादा खाना बच जाता या नल के पास कहीं चावल गिरे दिखते तो माँ उसे टोक देती। उसे शायद बुरा लगता पर अगली बार ऐसा न हो वह इस बात की भी पूरी कोशिश करती। पर कोशिशें कहीं इतनी आसानी से कामयाब होती हैं!

मैं जब भी घर जाता वह चाहती कि मैं उसे अपने साथ शहर ले चलूँ पर मेरा एक कमरे का मकान और उसमें भी एक अदद पार्टनर। मैं क्या करता ! यही वे दिन थे जब उसमें फिर से पढ़ने-लिखने की ललक पैदा हुई। इसके पहले वह इंटर पास थी बस। इंटर भी उसने उसी तरह किया था जिस तरह ग्रामीण अध्यापकों की लड़कियाँ करती हैं कि साल भर घर बैठो और परीक्षा के समय चिट-पुर्जी-किताब लिए अध्यापकों के मददगारों की पूरी फौज हाजिर। यह अनायास थोड़े ही है कि सरकार ने जब मेरिट के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षामित्र रखे तो उसमें निन्यानबे फीसदी शिक्षामित्र अध्यापकों के ही घर से आए। पत्नी भी शिक्षामित्र हो सकती थी पर एक तो उसे मुझसे दूर गाँव में रहना पड़ता, दूसरे, इस बीच उसकी पढ़ने की ललक इतनी बढ़ी थी कि वह बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास कर चुकी थी और समाजशास्त्र से एम.ए. में दाखिला ले चुकी थी और मेरे साथ रहते हुए क्लास ज्वाइन कर रही थी। शिक्षामित्र की नौकरी एक दूसरे अध्यापक की बेटी को मिल गई जिसकी बी.ए. करने में कोई रुचि नहीं थी और जिसे न साँप से डर लगता था, न अँधेरे से।

आजकल मैं एक डिग्री कॉलेज में शाम की शिफ्ट में पढ़ाता हूँ और मेरी पत्नी सुबह दस से दो बजे तक एक प्रोजेक्ट में कार्य करती है। उसकी सहेलियाँ, जो शादी के बाद उससे न मिली हों, आज मिल जाएँ तो उसे पहचान ही न पाएँ। वह आमतौर पर अपने काम से काम रखती है पर उसके दोस्तों की संख्या मेरे दोस्तों की दुगुनी होगी। छोटे-छोटे शहरों और कस्बों की लड़कियों में जो झुकी हुई गर्दन की एक खास पहचान होती है, उससे वह पूरी तरह मुक्ति पा चुकी है। वह एकदम तन कर चलती है, बेलौस तरीके से बतियाती है। और तो और, शादी के शुरुआती दिनों में उसके रहते जब कभी मैं खुद उठ कर पानी भी पी लेता, वह बुरा मान जाती थी। वही आज बड़े गुमान से कह देती है सइयाँ जी, जरा सिर दबा दो या फिर मैं कपड़े धोने बैठता हूँ तो वह अपनी नाइटी मेरी तरफ उछाल देती है और मैं उसकी इस अदा पर सौ-सौ जान से न्योछावर हो जाता हूँ।

इन सब बातों में शायद आपको कहानी का कोई पेच न दिखाई पड़ रहा हो। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि संपादक कहानी के साथ में कोई पेचदार चित्र जरूर छापे। कहानी में पेच सिर्फ इतना है कि कीड़े-मकोड़ों से डरने वाली मेरी पत्नी आज कहीं ज्यादा खतरनाक चीजों का सामना कर रही है और उनकी नस्लों का अध्ययन कर रही है। इसके बारे में भी मुझसे ज्यादा कौन जान सकता है कि उसकी खाल अब तक मोटी भी नहीं पड़ी, जरा भी दाब पड़ जाए तो लाल हो जाती है। फिर भी वह लकड़ी के एक नकली साँप से डर गई जबकि मेरी बेटी तुरत जरूर थोड़ा डरी थी और इसकी भी वजह शायद यह रही

हो कि उसके डर में मेरी पत्नी का भी डर शामिल हो गया हो पर थोड़ी ही देर में उसने झिझकते हुए हाथों से लकड़ी का साँप उठाया और अब गले में डाले घूम रही है। इसमें डरने की कोई बात ही नहीं है, फिर भी मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि मेरी पत्नी का चेहरा अजब तौर से पीला क्यों पड़ता जा रहा है।